भँवर में
भारत का लोकतंत्र

एक सपने के बिखरने की कहानी

अनिल सिन्हा

भंवर में भारत का लोकतंत्र

(एक सपने के बिखरने की कहानी)

अनिल सिन्हा

मेरी बात

भारत का लोकतंत्र बाकी मुल्कों से इस मायने में अलग है कि यह सिर्फ राजनीतिक अधिकारों की लड़ाई का नतीजा नहीं था। यह महात्मा गांधी, बाबा साहेब आंबेडकर, रवींद्रनाथ टैगोर, जवहरलाल नेहरू समेत देश के अनेक विचारकों के चिंतन से सींची गई एक जीवन-दृष्टि का फल था। इसमें एक नई सभ्यता बनाने की महत्वाकांक्षा थी। यह एक ओर स्वामी विवेकानंद, महर्षि अरविंद, महात्मा फुले से लेकर जे कृष्णमूर्ति जैसे दार्शनिकों के चिंतन से प्रभावित था तो दूसरी ओर मार्क्सवाद से लेकर समाजवाद तथा लोकतंत्र की अनके विचारधाराओं से प्रेरित था। इसे भगत सिंह, अशफाकुल्ल्ला खान, रामप्रसाद बिस्मिल और चंद्रशेखर आजाद ने अपने प्राणों की आहुति देकर और सुभाषचंद्र बोस, जयप्रकाश नारायण और डाक्टर लोहिया जैसों ने असहनीय कष्ट उठाकर साकार किया था। यह बीसवीं सदी का सबसे बड़ा सपना था।

भारतीय लोकतंत्र की स्थापना के बाद से ही इसकी सफलता को लेकर संदेह व्यक्त किया जाने लगा था। हमारे देश के साथ आजाद होने वाले ज्यादातर देशों में यह टिक नहीं पाया। अपने ही मुल्क से बंटकर अलग हुआ पाकिस्तान इसका सबसे बड़ा उदाहरण है। लंबे समय तक सैनिक तानाशाही में रहने के बाद वहां लोकतंत्र लौटा भी तो फौज के छतरी के भीतर ही काम करता है। यूरोपीय देशों, संयुक्त राज्य, कनाडा, आस्ट्रेलिया जैसे कुछ देशों को छोड़ दें, तो भारत जैसा खुला और बिना दबावों वाला लोकतंत्र बहुत कम दिखाई देता है। ऐसा नहीं है कि हमारे लोकतंत्र के सामने कम चुनौतियां रही हैं। सामाजिक और आर्थिक रूप से भयंकर गैर-बराबरी वाले इस मुल्क में एक समय ऐसा भी था कि कुछ इलाकों में दलित और कमजोर तबकों के लोगों को वोट ही डालने नहीं दिया जाता था। लेकिन अपने संकल्प से लोगों ने अपने इस अधिकार की रक्षा की। इंदिरा गांधी ने एक बार आपातकाल के जरिए नागरिकों के अधिकार छीन लिए थे और अपनी तानाशाही लाद दी थी। लेकिन यह ज्यादा समय नहीं चला। आपातकाल के बाद हुए चुनावों में लोगों ने तानाशाही को खारिज कर दिया। प्रक्रियाओं में सुधार के जरिए चुनावों को निष्पक्ष बनाने तथा धनबल और बाहुबल से मुक्त करने के भी ऐसे प्रयास हुए जो देश के इतिहास में दर्ज हो गए। इसका नतीजा यह हुआ है कि देश का कमजोर से कमजोर आदमी भी आज मतदान-

केंद्र पर शान से खड़ा मिलता है।

लेकिन 2014 में नरेंद्र मोदी के नेतृत्व में भाजपा के सत्ता में आने के बाद से बेहतर लोकतंत्र की ओर जाने वाला रास्ता सहसा बंद होने लगा है। सांप्रदायिक आधार पर संगठित शक्तियों तथा कारपोरेट ने लोकतंत्र का अपहरण कर लिया है। लोकसभा के पिछले दो चुनाव देश में अब तक हुए चुनावों में सबसे महंगे थे। ये चुनाव प्रचार में सबसे गिरे स्तर के थे और नफरत इनका मुख्य स्वर था। पिछले लोकसभा चुनाव ने तो संसदीय प्रणाली को गहरा धक्का पहुंचाया। इसे मुद्दों की जगह व्यक्ति को केंद्र में रख कर लड़ा गया। एक तरह से संसदीय प्रणाली को राष्ट्रपति प्रणाली में बदल दिया गया। पहली बार चुनाव के सारे नियम तोड़े गए और सत्ताधारी पक्ष का साथ देने का आरोप चुनाव आयोग पर लगा। निष्पक्ष चुनाव कराने के लिए हस्तक्षेप करने में सुप्रीम कोर्ट भी नाकाम रहा।

सवाल सिर्फ निष्पक्ष चुनावों का ही नहीं है। देश की तमाम संस्थाएं, जिन्हें लोकतंत्र को सहारा देने के लिए संविधान के निर्माताओं ने खड़ा किया था, एक के बाद एक गिरती जा रही हैं। रिजर्व बैंक आफ इंडिया से लेकर स्वतंत्र जांच एजेंसियां तक, कोई भी स्वायत्त तरीके से काम नहीं कर पा रही है। देश में बेरोजगारी के आंकड़ों को दबाने के लिए सांख्यिकी आयोग पर जिस तरह के दबाव डाले गए, उससे पता चलता है कि संस्थाएं किस तरह के हमले झेल रही हैं। जनता के पैसे से खड़ी की गई संपदा यानी सरकारी कंपनियों-बीएसएनएल, एयर इंडिया, रेलवे आदि को पूंजीपतियों के हाथों बेचा जा रहा है। सरकार खुल कर पूंजीपतियों की रक्षा में खड़ी है। आवाज उठाने वालो के खिलाफ न केवल पुलिस सक्रिय है, बल्कि सोशल मीडिया पर मौजूद गालियां बकने वाले जत्थे और सड़कों पर अलग-अलग चेहरा लिए गुंडों के गिरोह सक्रिय है। माब लिंचिंग की हिंसा मुसलमानों को उनकी जायज आवाज उठाने से रोकने का एक संगठित प्रयास है और यह देश में हिटलरशाही आने का संकेत दे रही है। पहली बार देश में शासन करने वाली पार्टी से कोई मुसलमान सांसद चुन कर नहीं आया है। आज मुसलमान 1947 के मुकाबले ज्यादा असुरक्षित है।

पहली बार सैन्यवाद की खुलकर वकालत की जा रही है और सेना के प्रमुख राजनीतिक बयान दे रहे हैं। सूचना के अधिकार के कानून में बदलाव के जरिए मोदी सरकार ने बेहतर लोकतंत्र की ओर बढ़ते पैरों में जंजीरें

बांध दी हैं।

लोकतंत्र के बिखरने की इस कहानी में मीडिया एक महत्वपूर्ण किरदार है जो सरकार के बदले विपक्ष से सवाल कर रहा है और सत्ताधारी पार्टी की नैरेटिव को आगे बढ़ाने में जुटा है। वह हिंदुओं और मुसलमानों के बीच नफरत फैलाने में जुटा है।

यह किताब लोकतंत्र को तानाशाही में बदलने और एक व्यक्ति तथा एक पार्टी के शासन को स्थापित करने के मौजूदा प्रयासों के विभिन्न आयामों को खोलने के लिए लिखी गई है। किताब में दिए गए अलग-अलग लेखों में भारतीय लोकतंत्र के बिखरने की यही कहानी है।

इन लेखों के लिए प्रेरित करने वालो की एक लंबी सूची है। इन नामों में अनिल जैन, एनडी पंचोली, विलक्षण रविदास, रामशरण, सुनील तांबे, गजानन खातू, सुभाष लोमटे, शमा दलवाई, भालचंद्र मुणगेकर, सुरेश खैरनार, नीरज जैन, सुभाष वारे प्रणव प्रियदर्शी, राजेश वर्मा, जयशंकर गुप्त, शिवेश गर्ग, प्रणव कुमार चौधरी , अमर शर्मा, मिर्जा बेग, काजी मकदूम और धीरेंद्र झा के नाम उल्लेखनीय हैं जिनके साथ होने वाली चर्चा लिखने को उकसाती रही है। ऐसे उकसावे मुझे अपने परिवार के सदस्यों-अरूण सिन्हा, अरविंद सिन्हा, अमिय सिन्हा, अमित सिन्हा, आशीष सिन्हा और आनंद सिन्हा से भी मिलते रहे हैं। मेरी पत्नी रागिनी सिन्हा मेरे विचारों का विरोध करती है और मुझे तर्क के दूसरे पहलू का दर्शन कराती है। द्रोहकाल, काम और रविवार डाइजेस्ट के सुभाष खंडेलवाल का विशेष आभार जिन्होंने मेरे लिखते रहने को आसान बनाया। अनन्य मित्र प्रकाश जोशी को आभार जो रचनात्मक लेखन के लिए दबाव डालते रहते हैं। अंत में विचार की इस लड़ाई में सोशल मीडिया और अन्य प्लेटफार्मों पर अपने साथ खड़े सभी दोस्तों को दिल से शुक्रिया जो मुझे संघर्ष साथी मानते हैं।

अनुक्रम

मेरी बात	3
मोदी की दूसरी पारी : एक व्यक्ति का शासन	9
मोदी की वापसी : एक दुःस्वप्न का सच होना	13
भाजपा की लड़ाई वंशवाद से नहीं है	16
इस बहुमत का नकाब उतरना चाहिए!	21
आखिर चुनाव आयोग फेल क्यों हुआ?	24
संघ ने सोच-समझ कर उतारा साध्वी प्रज्ञा को?	28
आज भी युद्धरत हैं डॉ आंबेडकर!	31
सुप्रीम कोर्ट का फैसला रफाल से आगे जाता है!	34
एक बीमार देश में नए साल की चुनौती	36
इतिहास को लेकर लड़ाई	38
राहुल गाँधी की कांग्रेस बदल रही है	41
सुप्रीम कोर्ट के फैसले से रफाल का मुद्दा और उलझा	47
मोदी सरकार से लड़ती संस्थाओं को चाहिए जनसमर्थन	49
गुजराती अस्मिता का खतरनाक नारा	52
16वीं लोकसभा में मोदी का विदाई भाषण	56
विशाल प्रतिमा के जरिए पटेल को छोटा करने की कोशिश	59
यही वक्त है विचारधाराओं को वापस लाने का!	62
कांग्रेस का नेहरूवाद की ओर लौटना	65

मयार्दाहीन होती चुनावी राजनीति	68
अटल भारतीय समाज की जड़ता के पोषक थे	71
संकीर्णताओं के दलदल में राष्ट्रपति-उपराष्ट्रपति चुनाव	74
बिहार के बच्चों को कौन मार रहा है?	77
मॉब लिचिंग के अपराधी खुद भी अन्याय के शिकार हैं	80
राजनीति में मी-टू	83
विज्ञान में कौन पीछे ले जा रहा है भारत को?	86
भाजपा राष्ट्रवाद नहीं, सैन्यवाद से प्रेरित है	89
केरल त्रासदी : कुछ हट कर सोचने का मौका	91
कश्मीर : बंद गली की ओर जाती राह	94
देश को चाहिए जेएनयू जैसे कई और बगीचे	100
हिन्दी का जाप कर दूसरों को मत डराओ	103
बिहारियों का कभी न खत्म होने वाला सफर	107
आरएसएस : नफरत की विचारधारा पर सद्भावना की चादर	110
हमें कहां ले जा रही है यह बुलेट ट्रेन?	114
गांधी के सपनों पर हमले वाला बजट	119
आजादी दिवस : कितनी आजादी बची है हमारे पास?	123
स्वतंत्रता दिवस की उदासी	127
भारतीय लोकतंत्र को विपक्ष-मुक्त बनाने की कोशिश	130
क्या सरकार अपनी मुहिम में कामयाब हो पाएगी?	135
ए.के. राय : लोकतंत्र के उजले पक्ष के प्रतिनिधि	136
प्रणब की नागपुर यात्रा : संघ की छवि बनाने की कोशिश	138

प्रणब की यात्रा को भोलेपन से मत देखिए 141

जिन्ना की तस्वीर ने सामने लाया हमारा बचकानापन 144

क्या वामपंथ अंत की ओर जा रहा है? 147

आपातकाल के सबक 153